प्रथम अध्याय

1§ प्रेमचन्द के पूर्व हिन्दी कहानी ।

2§ प्रेमचन्द समसामयिक हिन्दी कहानी ।

3§ प्रेमचन्द के उपरान्त हिन्दी कहानी ।

प्रथम अध्याय

१. प्रेमचन्द के पूर्व हिन्दी कहानी :

कला के अनेक प्रकारों में साहित्य का और साहित्य के अनेक प्रकारों में कहानी का महत्वपूर्ण स्थान है । साहित्य की विभिन्न विधाओं में कहानी ही एक ऐसी विधा है जिसका उदय मानवीय अभिव्यंजना के क्षेत्र में सर्वप्रथम हुआ । कहानी का सम्बन्ध भावाभिव्यंजन से है, ऐसी भावाभिव्यंजना जो भावनाओं को प्रायः उसी रूप में, उसी तीव्रता के साथ, उसी प्रभाव के साथ व्यक्ति तक प्रेषित कर सके, जिस रूप में उसका उदय रचनाकार के अन्तर्मन में हुआ है । इसी रूप में कहा जा सकता है कि कहानी समस्त साहित्यिक विधाओं की जननी है । "जिस प्रकार बूढी और अल्पकाय होते हुए भी परिवार में माँ ही गृहस्थी की साधारण ज़िम्मेदारियों का वहन सबसे पहले और सबसे अधिक करती है, उसी प्रकार साहित्य परिवार की जननी कहानी भी सबसे पुरानी और अल्प कलेवर होने पर भी सबसे अधिक सक्रिय और जागरूक दिखाई देती है । कहानी

की यह एक अतिरिक्त विशेषता है कि वह पुरानी तो है, पर बूढ़ी कभी नहीं होती । वह अपने को सतत नवीन और स्फूर्तिशील रखती है ।"[1]

हिन्दी की पहली कहानी किसे माना जाये ? इस विषय पर भिन्न-भिन्न आलोचकों ने अपने मत प्रकट करते हुए भिन्न-भिन्न कहानियों को हिन्दी की पहली कहानी करार दिया है । डॉ० बच्चन-सिंह ने किशोरीलाल गोस्वामी की 'प्रणयिनी परिणय' (सन् 1887 ई०) को हिन्दी की पहली कहानी के रूप में प्रस्तुत किया है । लेखक ने स्वयं उसे उपन्यास कहा है । इसका कारण यह बताया गया है कि सन् 1900 ई० तक कथा-साहित्य को उपन्यास कहने का चलन था । यह कहानी सात निष्कों में बँटी हुई है । "प्रत्येक 'निष्क' को अलग-अलग खण्ड मान लेने पर कहानी कई खण्डों में विभक्त दिखाई पड़ती है । इस तरह खण्डों में बाँट कर कहानी लिखने की प्रथा चलती रहती है । हर 'निष्क' या 'खण्ड' के प्रारम्भ में श्लोक-बद्ध नीति-कथन है । ये श्लोक कहानी के रूप-विन्यास में बाधक सिद्ध होते हैं । किन्तु इन्हें उपन्यास का तत्व नहीं कहा जा सकता ।"[2] कहानी के स्वबंध पर आख्यान पद्धति का पूरा प्रभाव है । संस्कृत निष्ठ शाब्दावली में केन्द्रीय भाव, प्रगाढ़ प्रेम की सुखद परिणति दिखाई गई है । लेकिन कई आलोचकों का मत है कि इसकी रचना-शैली उपन्यास के ही अधिक निकट है, अतः इसे उपन्यास का पूर्वाभास मानना अधिक संगत

1- "हिन्दी कहानी : पन्द्रह पगचिन्ह (भूमिका) सं० प्रो० महेन्द्रप्रताप तथा डॉ० बटरोही पृ०- 5

2- "सारिका" बच्चन सिंह दिसम्बर 1976, पृ०- 73

होगा ।[1]

शिलापंख-3 में कृष्णचन्द्र सेमका के सौजन्य से 'छली अरब की कथा' का प्रकाशन हुआ है । सन् 1893 ई० में प्रकाशित इस कहानी में हल्की-सी उपदेशात्मकता है, लेकिन अपने सीमित कलेवर में यह इतनी चुस्त-दुरूस्त बन पड़ी है कि आश्चर्य होता है । इसका महत्व तब और बढ़ जाता है, जब हम यह पाते हैं कि सुदर्शन की प्रख्यात कहानी 'हार की जीत' इसी कहानी में मामूली हेर-फेर के साथ गढ़ी गयी है । बाबा भारती की तरह नबोर भी कहता है कि इस घटना का कहीं वर्णन न करना क्योंकि 'ऐसा वृत्तान्त सुनकर यदि कोई मनुष्य सचमुच कहीं रोगी और दुःखी पड़ा हो तो लोग छल से डर कर उसकी सहायता न करेंगे क्योंकि यदि कृपा का काम करें तो कदाचित् नबोर की नाई हानि न उठावें ।'[2]

किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' (सन् 1900 ई०) को डॉ० सुरेशा सिन्हा ने पहली मौलिक कहानी माना है । सुरेशा सिन्हा के विचार में कहानी का निर्धारण समयक्रम से होना चाहिए न कि कथानक, शिल्प, विचार-धारा या अन्य किसी दृष्टिकोण से । 'इन्दुमती' की चर्चा प्रायः प्रत्येक आलोचक ने की है, लेकिन इस पर 'टेम्पेस्ट' की छाया मान कर इसकी मौलिकता पर प्रश्नचिन्ह भी लगाया गया है । आचार्य शुक्ल ने भी लिखा था कि यदि इस पर किसी अन्य भाषा की कहानी की छाया नहीं है तो हिन्दी की यही

1- "कथा मानस" सं० डॉ० राकेश गुप्त, ऋषिकुमार चतुर्वेदी, पृ०-66
2- "शिलापंख" सितम्बर 76 पृ०- 16

पहली मौलिक कहानी है ।[1] इसके अतिरिक्त माधव राव सप्रे की एक अन्य कहानी 'सुभाषित रत्न' (सन् 1900 ई०) को प्रथम मौलिक कहानी के रूप में प्रस्तुत किया । उनका कथन है कि "जनवरी सन् 1900 ई० में 'सुभाषित रत्न' शीर्षक कहानी छपी, जिसमें संस्कृत श्लोकों का चयन अपने कथानक को प्रमाणित एवं बल देने के लिए किया गया है । कथानक पूर्णतः स्वतन्त्र है । इस कहानी का अन्त कितने मार्मिक ढंग से किया गया है ।"[2]

माधव राय सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' (सन् 1901 ई०) के प्रकाशित हो जाने से स्थिति बिल्कुल बदल गई है । यह कहानी 'छत्तीसगढ़ मित्र' में प्रकाशित हुई थी । ओंकार शारद, देवीप्रसाद वर्मा और डॉ० देवेश ठाकुर ने इसे हिन्दी की पहली कहानी सिद्ध किया है । डॉ० देवेश ठाकुर के अनुसार यह एक ओर कालक्रम की दृष्टि से 'इन्दुमती' के एकदम बाद की रचना है, वहीं दूसरी ओर विषय की दृष्टि से यह अपने समय के यथार्थ और वस्तुपरक परिवेश से जुड़ी हुई है ।[3] डॉ० रामदरश मिश्र भी आर्थिक चेतना की कहानी होने के कारण इसे आधुनिक अर्थमूलक कहानियों की पहचान की पहली कहानी मानते हैं ।[4] इस कहानी में एक गरीब अनाथ विधवा की अपनी झोपड़ी के प्रति ममता और ज़मींदार की कहानी का चित्रण किया गया है । अत्यन्त संक्षिप्त और सरल भाषा में लिखी गई यह कहानी अपेक्षाकृत कहानी कला के अधिक निकट है ।[5]

1- "हिन्दी साहित्य का इतिहास" आचार्य शुक्ल पृ०- 481
2- "सारिका" जनवरी 1977, पृ०- 77
3- "हिन्दी की पहली कहानी" पृ०- 17
4- "हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान" डॉ० रामदरश मिश्र, पृ०- 5
5- "सारिका" जनवरी 1977, पृ०- 79

डॉ0 लक्ष्मीनारायण लाल ने शिल्पविधि के लिहाज़ से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' (सन् 1903 ई0) को पहली मौलिक कहानी करार दिया है। इस कहानी में 'प्लेटोनिक' प्रेम की चर्चा हुई है। कहानी का नायक में बरसों पहले ब्याही गयी पत्नी (जिसे उसने देखा तक नहीं है) के प्रति बेहद रागात्मकता है। कहानीकार इस प्रकार के प्रेम को दुर्लभ करार देता है, "इस अदृष्ट प्रेम का धर्म और कर्त्तव्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसकी उत्पति केवल सदाशय और निःस्वार्थ हृदय में ही हो सकती है।"[1]

डॉ0 मुरारी लाल 'शापित' ने माधव प्रसाद मिश्र की 'लड़की की कहानी' (सन् 1904 ई0) हिन्दी की पहली कहानी सिद्ध किया है।[2]

बंगमहिला की 'दुलाई वाली' (सन् 1907 ई0) द्विवेदी युग की बहुचर्चित कहानी है। डॉ0 कृष्णलाल और सुधाकर पाण्डये इसे यथार्थ चित्रण की सर्वप्रथम कहानी मानते हैं।[3] इस कहानी में वंशीधर 'स्वदेशी' का समर्थन करते दिखाई देते हैं, 'नाहक विलायती चीज़ें मोल लेकर क्यों रूपये की बर्बादी की जाए। देशी लेने से भी दाम लगेगा सही, पर रहेगा देश में।'[4]

राजेन्द्र यादव, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' नामक कहानी को हिन्दी की पहली सशक्त कहानी मानते हैं और इसी से

1- "हिन्दी की पहली कहानी" पृ0- 93

2- पं0 माधवप्रसाद मिश्र का प्रमुख कथा साहित्य" पृ0- 32

3- कहानी, [illegible] और संवेदना" [illegible] पृ0- 11

4- हिन्दी की पहली कहानी" पृ0- 99

आधुनिक हिन्दी कहानी का आरम्भ निर्धारित करते हैं ।[1]

हिन्दी की पहली कहानी कौन सी है ? यह एक विवादास्पद विषय है । यह कहना ठीक रहेगा कि हिन्दी कहानी के मौलिक स्वरूप का संकेत हमें सन् 1900 ई० के आस-पास लिखी गई कुछ कहानियों के माध्यम से मिलता है । ये कहानियाँ आदर्शमूलक नहीं हैं । पर इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि समाज संलग्नता इनमें बिल्कुल ही नहीं पाई जाती । हाँ, स्पष्ट रूप से सामाजिक संवेदना नहीं पाई जाती । इनका अधिकतर ऐतिहासिक महत्त्व है । हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत युग के कहानीकारों ने आधुनिक कहानी-कला के बीज बोये जो प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्दोत्तर युग में प्रस्फुटित हुए । अतः यह युग हिन्दी कहानी का शैशवकाल है । इस तथ्य का समर्थन डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दों से इस प्रकार होता है कि "प्राचीन कहानी के सर्वेक्षण से, उसकी दुर्बलताओं को समझना सरल है, पर उन कारणों की खोज कुछ कठिन है जो इस युग की कहानी में रचनात्मक सौष्ठव के समावेश में बाधक हुए हैं । ऊपर से देखने से ज्ञात होता है कि पुरानी मौखिक कहानी का आडम्बर और कृत्रिम लाक्षणिक भाषा, इस युग की कहानी में, स्वाभाविकता के विकास में बाधक हुई है । इसी अपरिपक्वता को लक्ष्य कर इस काल की कहानी को 'जन्मकाल' या बाल्यकाल का साहित्य कहा गया है ।"[2]

2§ प्रेमचन्द समसामयिक हिन्दी कहानी :

पूर्व प्रेमचन्द युग की कहानियाँ प्राचीन परम्परागत रूढ़ि से बंधी

1- "कहानी" स्वरूप और संवेदना" राजेन्द्र यादव पृ०-11
2- "हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया" डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव पृ०- 56

हुई है । इनमें वास्तविक समस्याओं का अभाव रहा है । इनका क्षेत्र मनोरंजन तक ही सीमित रहा है । प्रेमचन्द के आगमन से ही हिन्दी कहानी एक नवीन शक्ति और चेतना को लेकर आगे बढ़ी है। इनके साथ ही हिन्दी कहानी का क्षेत्र सामाजिक वास्तविक समस्याओं की ओर बदल गया है । डॉ0 परमानन्द ने इस तथ्य का समर्थन इस प्रकार किया है कि "प्रेमचन्द हिन्दी कहानी के ऐतिहासिक विकास क्रम में एक आधुनिक युग के प्रवर्तक इसी दृष्टि से माने जाते हैं कि उन्होंने कहानी को, जिसका क्षेत्र तिलस्मी ऐयारी घटना - संदर्भों एवं रहस्यमय रोमांचक वृत्तांतों तक ही सीमित था, मानव चरित्र के सूक्ष्म रहस्यों का उद्घाटन और सामाजिक वास्तविकता के विविध रूपों के मार्मिक एवं विश्वसनीय चित्रण के योग्य बनाया । इस भूमिका में प्राचीन हिन्दी कहानी को रख कर देखने से उसकी रूढ, वस्तुगत एवं शिल्पगत सीमाओं को ठीक-ठीक समझा जा सकता है ।"[1]

प्रस्तुत युग के परिवेश ने जनता को सचेत बना दिया । भारतीय जनता जड़ता, अन्धविश्वास और अज्ञान की पकड़ से छूटने लगी । आज़ादी बहुत बड़ा मूल्य बनकर सामने आयी । अनेक पुरातन रूढ़ियाँ चरमराने लगीं, कुछ टूट गयीं । नये जीवन मूल्य सामने आये । अहिंसा, सत्य, प्रेम, समानता, सेवा, शोषण का विरोध आदि मूल्यों को पुष्ट होने का अवसर मिला । शोषण, स्वार्थ, घृणा और वर्ग भेद की अप्रासंगिकता ज़ाहिर होने लगी । इस युग के जिन कहानीकारों ने इस परिवर्तन को

1- "हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया" डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव, पृ0- 56

रचनाओं में व्यक्त किया, प्रेमचन्द उनमें अग्रणी थे । यद्यपि चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', 'प्रसाद', उग्र, सुदर्शन, विनोदशंकर व्यास आदि कहानीकार भी इस युग के बदलते तापमान से अप्रभावित न रहे, फिर भी प्रेमचन्द भारतीय जनता की भावधारा के अधिक करीब पड़ते हैं । यह तथ्य सुरेन्द्र चौधरी के कथन से स्पष्ट होता है कि 'प्रेमचन्द की कहानियाँ इस भावधारा को अधिकाधिक विकसित करती चलती हैं । वह विचारधाराओं से सामान्यजन की भावधारा की दूरी कम करती हैं । यह उनका सबसे व्यापक समाजशास्त्रीय अवदान है ।'[1]

प्रेमचन्द के रचनात्मक विकास का अध्ययन करने पर उक्त तथ्य की पुष्टि मिलती है । उनकी जो आदर्श समाज में संदर्भित परिकल्पना हमें उनके प्रारम्भिक साहित्य में दिखाई देती है, वह प्राय: प्रेमचन्द-पूर्व-युगीन आदर्शों का ही एक विकसित और स्पष्ट रूप कही जा सकती है । इस रूप में यह कहा जा सकता है कि कोई भी नई रचनात्मक धारा अपने पूर्ववर्ती युग का ही, कुछ नये संदर्भों में, एक परिवर्तित स्वरूप होती है । सन् 1916 ई० में प्रेमचन्द की पहली कहानी 'पंच परमेश्वर' 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई है, इस कहानी में भारतीयता के आदर्शों को उसी परम्परागत रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है जिस रूप में हमें प्रेमचन्द पूर्व के कथाकारों में दिखाई देती है । प्रेमचन्द की अन्य महत्वपूर्ण कहानियों - 'आत्माराम', 'नमक का दरोगा', 'शान्ति' 'सुजान भगत' 'ईदगाह' इत्यादि में भी इसी आदर्शात्मक

1- उत्तरार्द्ध प्रेमचन्द अंक 'प्रेमचन्द कुछ कहानियाँ कुछ पड़ाव' - सुरेन्द्र चौधरी, पृ0- 163

स्वरूप का समर्थन मिलता है । इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक कहानियों- 'रानी सारंधा', 'राजा हरदौल', 'मर्यादा की वेदी' 'पाप का अग्निकुण्ड' आदि में शौर्य, साहस, पातिव्रत आदि मूल्यों को सम्मान दिया गया है । डॉ0 शैलेश ज़ैदी के शब्दों में - "ये कथाएँ हिन्दू वातावरण की कथाएँ हैं, हिन्दू इतिहास की कथाएँ हैं । इनमें भावात्मक एकता का लोप है, लोकहित का एहसास नदारद है, सामाजिकता पंगु होकर रह गई है । इनका उद्देश्य संकुचित और संकीर्ण है ।"[1] हिन्दू चरित्रों को लेकर कहानी लिखना पाप नहीं है । फिर हिन्दू इतिहास क्या होता है ? यदि रानी सारंधा मुगलों की कैदी नहीं बनना चाहती तो एक प्रकार से आज़ादी की मूल्य की रक्षा है । इन्हीं कहानियों पर विचार करते हुए मधुरेश ने इस तथ्य को बखूबी पकड़ा है कि एक लेखक के तौर पर वे अपने वीर नायक-नायिकाओं के व्यक्तिगत चारित्रिक गुणों का उपयोग अपने राष्ट्रीय संदर्भों में करते हैं ।[2]

वे मनुष्य से 'सात्विक प्रकृति' का होने की अपेक्षा करते रहे । 'पंचपरमेश्वर' 'बड़े घर की बेटी' 'सज्जनता का दंड' 'नमक का दरोगा' आदि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं । 'पंचपरमेश्वर' न्याय की पवित्रता में विश्वास जगाने की कहानी है, जबकि 'बड़े घर की बेटी' में संयुक्त परिवार के टूटने से बच जाने पर प्रसन्नता व्यक्त हुई है । संयुक्त परिवार एक साथ बन्धुत्व, सहयोग, सेवा आदि मूल्यों का संयुक्त प्रतिनिधित्व

1- "प्रेमचन्द का कथा संसार" सं0 बादामसिंह रावत, पृ0- 57
2- -दस्तावेज़ 7/8 कहानीकार, प्रेमचन्द पृ0- 180

करता है । 'सज्जनता का दण्ड' और 'नमक का दरोगा' ईमानदारी की मूल्य मर्यादा के इर्दगिर्द घूमती है । प्रायः इनमें प्रेमचन्द नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करते नज़र आते हैं ।

'शतरंज के खिलाड़ी' सामंती मूल्यों के अन्तर्विरोध को अच्छी तरह व्यक्त करती है । मीर साहब और मिर्ज़ा के शौर्य और साहस की झलक बस 'शतरंज' के खेल में देखी जाती हैं । शतरंज के एक मोहरे के लिए वे आपस में लड़ जाते हैं, लेकिन वाजिद अल्लीशाह के लिए वे तनिक भी विचलित नहीं होते । किस प्रकार सामंत वर्ग घोर विलासिता में डूब कर साहस स्वामि-भक्ति, त्याग आदि मूल्यों से शून्य हो जाता है, शतरंज के खिलाड़ी में बहुत साफ है ।

अन्तिम कहानियों में प्रेमचन्द स्वयं को सुधारवादी मूल्य व्यवस्था से अलग कर लेते हैं । 'कफन' एक प्रकार से मानवीय मूल्य हीनता की कहानी है । घीसू-माधव को लेकर लिखी गई यह कहानी प्रभाव में तीक्ष्ण और बुरदरी है । घीसू-माधव के एक ओर बुधिया है, दूसरी ओर गाँव । 'बुधिया के माध्यम से इनका रागात्मक सम्बन्ध और गाँव के माध्यम से धार्मिक और नैतिक सम्बन्ध पुनः परीक्षित होता है । अर्थात् हमारे सामने गाँव का एक यथार्थ है, जिसके मूल में है अर्थ । यह अर्थ गाँव के जीवन के सम्बन्धों और मूल्यों को विघटित कर रहा है, दूसरी ओर आम आदमी को एक नयी विद्रोही दृष्टि भी दे रहा है ।'[1] बुधिया प्रसव पीड़ा की वेदना से चीखती रहती है, बाप-बेटा आलू खाते हुए इस

1- 'हिन्दी कहानी अन्तरंग पहचान' डॉ0 रामदरश मिश्र पृ0-15

इस इन्तिज़ार में है कि वह मर जाये । माधव अलाव के पास से इसलिए भी नहीं उठना चाहता कि कहीं उसका बाप आलुओं का बड़ा हिस्सा साफ न कर जाए । 'पिता' और 'पत्नी' के सम्बन्धों के प्रति यह निस्संगता निर्मम होते हुए भी वास्तविक है । बुधिया की चीख पुकार के बीच अजगर की तरह गेंडुली मार कर उनका सो जाना इस बात का प्रमाण है कि वे किसी संवेदना या भावना से ऊपर उठ कर पूरे परमहंस हो चुके हैं । 'वे पूरे बोहिमियन - पूरे हिप्पी हैं । उनकी कुछ भी मूल्य मान्यता नहीं । उनके पास कुछ भी नया नहीं ।'[1] बोध के स्तर पर 'कफन' बेहद नुकीली है । एक ओर वह हिप्पी बनाने के लिए ज़िम्मेदार - समाज व्यवस्था को कोंचती है, जो धर्म और नैतिकता को ताक पर रख कर कफन के पैसों से शराब पीने में नहीं हिचकती है ।

प्रेमचन्द मात्र जीवन की विसंगतियों के कथाकार नहीं हैं । उन्होंने अपनी जीवन यात्रा में संघर्ष झेले हैं, कड़वाहट सही है और अपने ही बनाए मानवता के उच्चादर्श ध्वस्त होते हुए देखे हैं । इसीलिए उनका कहानीकार अपनी बनाई हुई रूढ़ि को तोड़ कर 'पूस की रात' 'ठाकुर का कुँआ' और 'कफन' जैसी अत्यन्त जीवन्त रचनाएँ दे सका ।

प्रेमचन्द के साथ-साथ प्रसाद का योगदान भी महत्वपूर्ण है । प्रेमचन्द वन और जगत के कथाकार हैं । उनकी प्रवृत्ति बहिर्मुखी रही है । प्रसाद की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी रही है । वे अत्यधिक भाव-प्रवण कलाकार रहे हैं, जिनमें आभिजात्य विचार तथा प्रखर कल्पना का प्राधान्य है । इनकी

1- "आजकल" हंसराज रहबर, मई 1980, पृ0- 25

कहानियों में 'प्रेम' की किसी न किसी सामाजिक सरोकार या सामाजिक मूल्य के सहयोग या विरोध में दिखाया गया है । 'आकाश दीपं' और 'पुरस्कार' इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । 'आकाशदीप' की चम्पा बुद्धगुप्त से प्रेम करती है, किन्तु पिता का घातक होने की आशंका में उससे घृणा करती है । इस अन्तर्द्वन्द्व में वह टूटती जाती है, अन्ततः स्वेच्छा से बुद्धगुप्त से विछोह का वरण करती है । उसका निजी प्रेम द्वीप-वासियों की सेवा के भाव से जुड़कर और भी दीप्त हो उठता है । चम्पा बुद्धगुप्त से निवेदन करती है कि 'प्रिय नाविक ! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए ।' 'पुरस्कार' में एक साथ दो मूल्यों - 'प्रेम' और 'देशप्रेम' की रक्षा की कोशिश है । जब मधूलिका देशप्रेम के आवेश में प्रेमी को पकडवा लेती है, तब लगता है 'प्रसाद' देशप्रेम को प्राथमिक महत्त्व दे रहे हैं, लेकिन जब कहानी के अन्त में वे राजकुमार अरुण की बगल में खड़ी हो जाती है, तब प्रेम विजयी होता दिखाई देता है । इस प्रकार प्रसाद 'निजीप्रेम' को नितान्त वैयक्तिक और समाज निरपेक्ष होने से बचा लेते हैं । प्रेम को महत्त्व देने वाले कल्पना जगत में रहते हैं । इसका अर्थ यह नहीं कि प्रसाद की कहानियों में कल्पना का आधिक्य है और वे यथार्थ से विमुख हैं । 'ममता' 'मधुआ' और 'बेडी' जैसी कहानियों में वे यथार्थवादी होने के प्रयत्न में दिखाई देते हैं ।

प्रेमचन्द युग के अन्य कहानीकारों में सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ शर्मा

'कौशिक' चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' राधिकारमण प्रसाद, विनोदशंकर व्यास, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' आदि उल्लेखनीय हैं । इनमें से अधिकतर कहानीकार मूल्याभिव्यक्ति की दृष्टि से 'प्रसाद' की रोमांटिक संवेदना के अधिक निकट हैं । प्रेमचन्द, सुदर्शन, उग्र आदि तत्कालीन संदर्भों से जुड़े हुए स्वस्थ और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा में संलग्न थे । प्रसाद, चन्द्रधरशर्मा गुलेरी, राधिकारमण प्रसाद आदि की कहानियाँ 'प्रेम' की महार्थता का उद्घोष करती है । राधिकारमण की कहानी 'कानों में कंगना' रागात्मक लगाव को बहुत ऊँचा उठाती है । सुदर्शन में सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का आग्रह देखा जा सकता है । 'न्यायमंत्री', 'हार की जीत' आदि कहानियों में परोपकार, न्याय, सत्य आदि मूल्य देखने को मिलते हैं । 'उग्र' अतियथार्थवादी कथाकार हैं । गलत और गलित मूल्यों के निर्मम विरोध और पारम्परिक नैतिक मूल्यों को खुली चुनौती देने के तौर पर उनकी कहानियाँ उल्लेखनीय हैं । 'दिल्ली की बात' 'शाप' आदि कहानियों में उन्होंने साम्प्रदायिक एकता की वकालत की हैं । 'ऐसी होली खेलो लाल' 'उसकी माँ' आदि कहानियों में वे राष्ट्र प्रेम, शौर्य, मातृत्व आदि आदर्शों के पोषक हैं । उन्होंने समलैंगिक मैथुन आदि विषयों पर भी लिखा है, जिसे लेकर बहुत बावला भी मचा है । दरअसल वे नकारात्मक और ह्रासोन्मुख मूल्य व्यवस्था के कभी समर्थक नहीं रहे हैं । विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने मुख्यत:

पारिवारिक दायरे में मूल्य संकट और मूल्य निर्मिति की स्थितियों को कथ्य बनाया है । 'रक्षा बन्धन' और 'ताई' उनकी उल्लेखनीय कहानियाँ हैं । चतुरसेन शास्त्री ने 'कंकडी की कीमत' में इस विसंगति को व्यक्त किया है कि किस प्रकार सम्पन्न वर्ग के लोग थोथी मान-मर्यादा को जीवन मूल्य मान बैठते हैं । 'दे खुदा की राह पर' साम्प्रदायिक सद्भाव और भाईचारे को उभारती है । वृन्दावनलाल वर्मा की ऐतिहासिक कहानियाँ 'राखी बन्द भाई' 'सामंत संहार' 'कलाकार का दंड' आदि सामंती परिवेश से गुंथी होने पर भी आज के संदर्भ में प्रासंगिक सकारात्मक मूल्यों का अभाव है । वर्मा जी ने इन कहानियों में ऐतिहासिक तथ्य और उसकी वस्तुनिष्ठा का प्रतिपालन सफलता पूर्वक किया है ।[1] वर्मा जी की सामाजिक कहानियों में मूल्याभिव्यक्ति का आग्रह स्पष्ट है ।

इस दृष्टि से प्रेमचन्द - युग पुराने तथा नये मूल्यों के संघर्ष का युग रहा है । यद्यपि अधिकांश लेखकों ने इस संघर्ष को परम्परागत मान्यताओं द्वारा ही सुलझाने का प्रयास किया है, किन्तु अपने रचनात्मक विकास के साथ ही उन्हें यह लगने लगा कि नई समस्याओं को सुलझाने के लिए आदर्शों का परम्परागत स्वरूप पर्याप्त नहीं है ।

3§ प्रेमचन्द के उपरान्त हिन्दी कहानी :

प्रेमचन्द के उपरान्त जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल भगवतीचरण वर्मा, विष्णु प्रभाकर, अमृतलाल नागर, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

1- बीसवी शताब्दी : दो दशक — डॉ० कुसुम अग्रवाल पृ०- 91

रांगेय राघव, भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि लेखकों की रचनाओं के माध्यम से एक नये प्रकार के रचना-बोध के दर्शन होते हैं । इस कहानी में दो स्वर प्रमुख रहे हैं - सामाजिक मूल्य तथा व्यक्तिगत मूल्य ।

प्रेमचन्द की समाजवादी विचारधारा की भूमि पर यशपाल भव्य भवन का निर्माण करते हैं । प्रेमचन्द की परम्परा को वे आगे भी बढ़ाते हैं और उसे छिटक कर दूर भी जाते हैं । वैचारिक पृष्ठभूमि में उन्होंने मार्क्स और फ्रायड के दर्शन का आधार ग्रहण किया । वे कहानी की सोद्देश्यता में तो विश्वास रखते हैं ; किन्तु कहीं भी उपदेशक नहीं बनते । शोषक और शोषित वर्ग की सही पहचान करने की कोशिश उनकी रचनाओं में है । इनके बीच की दुर्लंघ्य खाई का यथार्थपरक प्रस्तुतीकरण उनकी कहानियों की विशेषता है । वे अधिकांशतः अपनी बात सीधे ही कहते हैं । उनकी कहानियों में छिपाव, अस्पष्टता और पहेली बुझाने जैसा भाव शायद ही कहीं मिले ।

यशपाल ने 'रोटी का मोल' 'भवानी माता की जय' 'नैतिक बल' आदि कहानियों में 'शोषण' के विरुद्ध शोषितों की जुझारू चेतना को रेखांकित करने के साथ इस 'जेनुइन' संघर्ष के उस संक्रामक प्रभाव की चर्चा भी की है, जो तटस्थ या विरोधी को भी अपनी लपेट में ले लेता है । 'रोटी का मोल' का रामगोपाल कहानी के आरम्भ में अपने सेठ की ओर है, 'जमाखोरी' का विरोध करने वाले उसे अच्छे नहीं लगते । लेकिन कहानी के अन्त में वह उन लाल झंडे वालों से सहमत हो जाता है ।

'वर्दी' कहानी में वर्दी उतार कर फेंकना गुलामी से मुक्ति का प्रतीक बन गया है । 'नैतिक बल' भी श्रमिकों के शोषण पर एक कठोर टिप्पणी है । इन कहानियों में समता, न्याय, अशोषण आदि मूल्यों का ज़बरदस्त समर्थन दिखाई देता है । हृदय परिवर्तन इन कहानियों में भी है, लेकिन वह यांत्रिक या थोपा हुआ नहीं है ।

जहाँ यशपाल में 'विचार' रचना में प्राय: खप जाता है, रांगेय राघव में 'मूल्य' सतह पर तैरता रहता है । मधुरेश के शब्दों में 'बीच बीच में भाषण की शैली में पूंजीवाद, साम्राज्यवाद आदि की भर्त्सना से लेकर राजनीतिक विकृतियों, अत्याचार, बर्बरता आदि को समेट लिया जा सका है और बड़े सतही ढंग से इन सबको किसानों - मज़दूरों के कथित हितों से जोड़ दिया गया है ।'[1] 'यह ग्वालियर है ' में रांगेय राघव ने यशपाल से आगे बढ़ कर मज़दूर संघर्ष के उग्र और हिंसक होने की सम्भावना को नज़रअन्दाज़ नहीं किया है । जीवन मूल्यों को उभारने की दृष्टि से उनकी कहानियाँ 'गदल' 'पंचपरमेश्वर' 'अभियान' आदि उल्लेखनीय है । 'गदल' मे एक विशिष्ट संदर्भ में प्रेम की मर्यादा बहुत मूल्यवान हो उठी है । 'पंचपरमेश्वर' अन्याय की सत्ता को चुनौती देते हुए मूल्यविघटन का संकेत देती है । 'अभियान' एक भिखारिन के आत्म-सम्मान और गंदगी से उभरने यानी कि स्वावलम्बन को ज़ोरदार ढंग से पेश करती है ।

अमृतराय की 'एक साँवली लड़की' 'समय' 'गीली मिट्टी' आदि

1- 'लहर' जनवरी 1979 पृ0- 9

कहानियाँ किसी-न-किसी अन्तर्विरोध या विसंगति को कुरेदती है । 'गीली मिट्टी' असमानता पर बहुत मार्मिक और कठोर टिप्पणी है । भूख और असहायता आम आदमी को न केवल जानवर बनने के करीब पहुँचा देती है अपितु उसकी आवाज़ भी छीन लेती है । भैरवप्रसाद की 'चाय का प्याला' और 'भंगली की टिकुली' जैसी कहानियों में भी सामाजिक आर्थिक विसंगतियों पर कड़ी नज़र रखी गई है ।

डॉ० रामदरश मिश्र ने 'अश्क' को मार्क्सवादी दृष्टिकोण का कहानीकार माना है, 'मार्क्सवादी दृष्टिकोण को लेकर कहानियाँ लिखने वालों में यशपाल के पश्चात् 'अश्क' का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।'[1] वस्तुतः अश्क यथार्थ चित्रण की हद तक मार्क्सवादी है, वे समस्याओं पर मार्क्सवादी तरीके से नहीं सोचते । इसके अलावा उन पर फ्रायड का प्रभाव भी बहुत है । 'एम्बेसडर' 'पलंग' 'नासूर' आदि कहानियाँ इसकी गवाही देती है । दरअसल अश्क समाजवादी और मनोवैज्ञानिक कहानीकारों के मिले जुले तेवर के कहानीकार हैं । उनमें व्यंग्य की धार प्रेमचन्द और यशपाल की याद दिलाती है और यौन समस्याओं पर लिखते समय अज्ञेय, जैनेन्द्र की सी सूक्ष्मता का परिचय देते हैं । वैसे उनमें समाज 'संलग्नता' अधिक है । "अश्क की सामाजिक दृष्टि अद्यतन प्रगतिशील रही है तथा उन्होंने अपनी रचनाओं में तेज़ व्यंग्य का सहारा लेते हुए शक्ति के साथ अपने सामाजिक मन्तव्यों को व्यंजित भी किया है ।"[2]

1- हिन्दी कहानी : एक अंतरंग पहचान" डॉ० रामदरश मिश्र पृ०-49
2- संचेतना हृषीकेश, दिसम्बर 1967, पृ०- 13

'डाची', 'कांकड़ा का तेली' 'आकाशचारी' 'बैंगन का पौधा' आदि कहानियों में जहाँ एक ओर शोषण की प्रक्रिया और स्वरूप को खोला गया है, वहीं शोषित वर्ग की असहायता को उभारा गया है ।

इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की 'वापसी' 'मास्टर साहब' 'पुलाव और सरदी' और विष्णु प्रभाकर की 'धरती अब भी घूम रही है' आदि कहानियाँ सामाजिक मूल्यों की ओर संकेत करती हैं ।

जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी आदि कहानीकारों ने व्यक्तिगत मूल्यों को लेकर अपनी कहानियों की रचना की है । जैनेन्द्र 'अपना-अपना भाग्य' 'पत्नी' आदि कहानियों में सामाजिक यथार्थ के पास आते दिखाई देते हैं, लेकिन यह उनकी वास्तविक दिशा नहीं है । डॉ० इन्द्रनाथ मदान के अनुसार "जैनेन्द्र की मूल समस्या मुक्ति की समस्या है और मुक्ति एकाकीपन से मुक्ति या गहरी बोरियत से नजात है । इनके लिए सामूहिक मुक्ति या सामाजिक मोक्ष का प्रश्न ही नहीं उठता । ---- इस मूल समस्या को एकाकीपन से मुक्ति पाने की समस्या को प्राय: प्रेम तथा विवाह के माध्यम से उठाया गया है ।"[1] यहीं कारण है कि उनकी कहानियों में तात्कालिक सवालों के बजाय 'शाश्वत' कहे जाने वाले मूल्यों पर सोच विचार मिलता है । जैनेन्द्र जहाँ कभी विवाह की संस्था पर प्रहार करते हैं, वहीं दूसरी ओर 'प्रेम' की महानता प्रतिपादित करते हैं । 'जाह्नवी' में 'प्रेम' चरम मूल्य के रूप में चित्रित हुआ है ।

अज्ञेय क्रान्तिकारियों और विभाजन के बाद के शरणार्थियों को

1- "हिन्दी कहानी: पहचान और परख" डॉ० इन्द्रनाथ मदान पृ०-17

लेकर लिखी कहानियों में मानव मूल्यों की पक्षधरता का संकेत दिया है । "यह अलग बात है कि मानव मूल्यों की पक्षधरता वाली कहानियों में भी दोनों ही प्रकार की कहानियाँ मिलती हैं — वैसी भी जो मानवीय तत्वों, जिजीविषा और सामंती मूल्यों का विरोध करके बड़े सहज और अनारोपित ढंग से सामान्य आदमी के दुःख-दर्द, आकांक्षाओं और संघर्ष की बात करती है और वैसी भी जो अज्ञेय की दूसरी कहानियों की तरह रोमानी आदर्शवाद और भावुकता की शिकार है ।"[1] 'बदला' जैसी कहानियाँ साम्प्रदायिक विद्वेष से ऊपर उठ कर मानव मात्र के सम्मान और सद्भाव की वकालत करती है । बदला का बूढ़ा सिख सोचता है कि शेखपुरे में जो हादसा उनके साथ गुज़रा है, वह किसी और के साथ न गुज़रे । वह औरत की बेइज़्ज़ती को इन्सान की माँ की बेइज़्ज़ती समझता है । लेकिन 'लेटरबाक्स' सही मूल्यबोध के बावजूद अस्वाभाविक लगती है क्योंकि इसका अवलोकन बिन्दु पाँच वर्ष के बच्चे का है ।

अज्ञेय की कुछ कहानियाँ 'प्लेटोनिक लव' को सार्थक मानकर लिखी गई है । 'सिगनेलर' 'मनसो' आदि में वे मूक प्रेम के उतार चढ़ाव को दिखाते हैं । 'रोज़' कदाचित् उनकी सबसे अच्छी कहानी है, लेकिन इसमें मूल्य बोध मुखर न होकर सांकेतिक है । मालती में परिवेश की एकरसता में मातृत्व भी सूख लेता है । बच्चे के गिर जाने पर भी उसका वात्सल्य नहीं जागता ।

जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक

1- "सिलसिला" मधुरेश पृ0- 14।

चिन्तन से प्रभावित है । व्यक्ति के अन्तर में निहित काम-संवेगों के माध्यम से मानवीय स्थितियों के चित्रण का यह स्वरूप एक तो सीधे फ्रायड तथा उसके सामर्थकों के द्वारा प्रस्तुत हुआ तथा दूसरी ओर बँगला साहित्य से आया । जैनेन्द्रकुमार की 'कः पन्था', 'जाह्नवी' 'नीलम देश की राज्यकन्या' इत्यादि कहानियाँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । डॉ० शिवदान सिंह चौहान के अनुसार "जैनेन्द्र ने बाह्य और आन्तरिक जीवन के उभय - पक्ष को पूरी मनोवैज्ञानिक सच्चाई के साथ समन्वित करने की कोशिश की है और हिन्दी कहानी को एक नई अन्तर्दृष्टि संवेदनशीलता और दार्शनिक गहराई प्रदान की है और इस प्रकार, हिन्दी का बौद्धिक स्तर ऊँचा उठाया है ।"[1]

व्यक्ति के आन्तरिक परिवर्तन का एक नया स्वरूप हमें जिस प्रकार अज्ञेय की कहानियों में देखने को मिलता है, आन्तरिक अनुभूतियों का विशुद्ध मनोवैज्ञानिक अध्ययन हमें इलाचन्द्र जोशी की कहानियों में भी दिखाई देता है । जोशी जी के प्रारम्भिक कथा-साहित्य में फ्रायड का व्यापक प्रभाव है । यह प्रभाव कहीं-कहीं पर इतना अधिक है कि पात्र वास्तविक जीवन की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियों से अत्यधिक ग्रस्त लगते हैं । ऐसे स्थानों में मनोवैज्ञानिकता उनकी कहानियों में आरोपित हो गई है । यही कारण है कि 'साधारण पाठक [उनका] आनन्द नहीं उठा सकता पर इतना अवश्य है कि मनोविज्ञान के ज्ञाता के लिए इन कहानियों में एक अतिरिक्त आनन्द प्रदान करने की क्षमता है ।"[2]

1- "हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष" डॉ० शिवदान सिंह चौहान, पृ०-187

2- "आधुनिक कथा साहित्य और मनोविज्ञान" डॉ० देवराज उपाध्याय, पृ०- 261

प्रेमचन्दोत्तर कहानीकारों की इस संक्षिप्त रचना-यात्रा के माध्यम से इस तथ्य की पुष्टि मिलती है कि युग के बदलते हुए मूल्यों का प्रभाव किसी रचनाकार पर कितनी तीव्रता के साथ पड़ता है । किसी भी नई रचनात्मक धारा का सूत्रपात ही बदलते हुए युग की नवीन आवश्यकताओं के कारण होता है । साहित्य के नये मूल्य, आदर्श तथा मानदण्ड इसी नवीं आवश्यकता की उपज होते हैं । इस रचना यात्रा में प्राय: सभी पहलुओं को लेकर कहानियाँ लिखी गई, किन्तु उनके माध्यम से हम किसी विशिष्ट प्रवृत्ति तथा रचनात्मक व्यक्तित्व की धारणा नहीं कर सकते । छिट-पुट रूप में शिल्प सम्बन्धी प्रयोग भी सामने आये तथा समाज के विभिन्न अंगों पर रचनाएँ लिखी गई । प्रेमचन्द पूर्व, प्रेमचन्दीय तथा प्रेमचन्दोत्तर कहानी-साहित्य के माध्यम से जो कहानीकार प्रकाश में आये, उनमें से प्राय: सभी का आग्रह अधिक से अधिक विविधतापूर्ण साहित्य लिखने की ओर ही रहा । प्रेमचन्द, सुदर्शन, अज्ञेय, जैनेन्द्र तथा यशपाल का रचनात्मक क्षेत्र मुख्यतया कथा-साहित्य होने के कारण उनकी कहानियों के माध्यम से कुछ विशिष्ट परम्पराओं का भी निर्माण होता है । इस कहानी के प्रेरणा स्रोत मुख्यतया समाज और जीवन की विषमताएँ व जटिलताएँ न होकर वे मान्यताएँ तथा आदर्श थे जिनका सामाजिक रूप से प्रचलन था ।[1]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के राजनैतिक जीवन में परिवर्तन होना तो स्वाभाविक ही था, हमारा सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक और वैयक्तिक जीवन भी इस परिवर्तन से अछूता नहीं रह सका । इस

1- "हिन्दी कहानी : पन्द्रह पगचिन्ह (भूमिका) सं० प्रो० महेन्द्र प्रताप तथा डॉ० बटरोटी, पृ०- 37

परिवर्तित स्थिति ने प्रत्येक भारतीय की जीवन दृष्टि को भी गम्भीर रूप से प्रभावित किया । प्रत्येक प्रबुद्ध भारती ने अनुभव किया कि स्वतंत्रता के बाद उसके चारों ओर का परिवेश, उसके जीवन-मूल्य और आदर्श कितनी तीव्रता से बदल रहे हैं । इसके अतिरिक्त उन मूल्यों और आदर्शों में एक गम्भीर टकराहट भी स्वातंत्र्योत्तर भारत का मनुष्य झेलने लगा । ये सारी स्थितियाँ हिन्दी साहित्य की रचना भूमि में भी दृष्टि-गोचर होने लगी । सन् 1947 के बाद का रचनाकार इन सारे परिवर्तनों, मूल्यगत और आदर्शगत टकराहटों को अपने साहित्य में अभिव्यक्ति देने लगा और इस प्रकार हिन्दी कहानी पूर्णतः भिन्न यात्रा पथ पर अग्रसर होने लगी । कुछ वर्षों तक देश एक प्रकार के संक्रमण में जीता रहा और अराजकता की यह स्थिति जैसे ही समाप्त हुई, देश में लोकतन्त्र फिर से स्थापित हो गया, साहित्य धर्मियों को साहित्य सृजन के लिए एक नया वातावरण मिला । हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में राजकीय स्वीकृति मिली और भारतीय साहित्य में उसकी ऐतिहासिक भूमिका का समारम्भ हो गया ।[1] इस स्थिति में कहानी जैसी लोकप्रिय साहित्यिक विधा को विकसित होने के लिए सबसे अधिक अनुकूल वातावरण मिला ।

स्वतन्त्रता के पूर्व की कहानी और उसके बाद की कहानी में अन्तर स्पष्ट करना यहाँ आवश्यक है । स्वाधीनता से पूर्व के कहानीकारों का

1- "नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति" सं० डॉ० देवीशंकर अवस्थी, पृ०-21।

दृष्टिकोण, स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र के प्रति, नए कहानीकारों से सर्वथा भिन्न हैं । उनके सामने तब एक समग्र लक्ष्य था और वह लक्ष्य था अंग्रेज़ी शासन से देश की मुक्ति । उनके अपने संघर्ष, अपनी चिन्ताएँ थीं । नैतिकता के प्रति उनका अपना दृष्टिकोण था और लेखन-धर्म की उनकी अपनी मूल्यवत्ता थी । स्वतन्त्रता की प्राप्ति उनके सम्पूर्ण संघर्ष का महत्तम पुरस्कार और उनके जीवन की अन्यतम उपलब्धि थी । किन्तु विजय के उत्साह में वे देश के सामाजिक, राजनैतिक जीवन में फैलती जा रही विकृतियों को, निरन्तर बढ़ते जा रहे अन्धेरों को नहीं देख सके । इसके विपरीत नई पीढ़ी का संघर्ष अंग्रेज़ों से न होकर उसके अपने देशवासियों से होना आरम्भ हुआ । नई पीढ़ी का शोषक विदेशी शासक नहीं, उसका अपना देशवासी था । उसके शोषण और अपमान के लिए उत्तरदायी उसके अपने सम्बन्धी थे । अपने सम्बन्धियों से संघर्ष का यह क्रम स्वतन्त्रता से पहले भी चलता रहा था, परन्तु तब कहानीकार की दृष्टि आदर्श से आच्छादित रहती थी ।[1]

इससे एक नयी भारतीय मनोदृष्टि विकसित हुई थी जिसकी अभिव्यक्ति साहित्य में, कई रूपों और स्तरों पर हुई - कहीं नैतिक, सांस्कृतिक और मानवीय मूल्यों के प्रति निष्ठा-भावना के रूप में, कहीं सामाजिक-आर्थिक स्थितियों, समस्याओं के प्रति निष्ठा-भावना के रूप

1- "हिन्दी कहानी सातवां दशक" - प्रहलाद अग्रवाल पृ0- ।।

वैयक्तिक
में, कहीं/सामाजिक धरातलों पर यथार्थ और स्वप्न के सामंजस्य के रूप में और कहीं सम्बन्धों की सतह पर आदर्श और यथार्थ की द्वन्द्वपूर्ण स्थितियों की अभिव्यक्ति के रूप में । स्वतन्त्रता प्रेरित इस मनोदृष्टि में साहित्यिक चिन्तन और बोध को, गहराई से प्रभावित किया था । इसके तुरन्त बाद के कुछ वर्ष मूल्य-स्तर पर असमंजसता के वर्ष हैं । यह असमंजसता ही आगे चल कर एक व्यापक धरातल पर मोहभंग में बदल गई । इस मोहभंग की प्रारम्भिक दस्तक, इस बीच नवलेखन के रूप में उभरे 'नहीं कहानी' के उन्मेष में देखी जा सकती है । इनमें सांस्कृतिक साहित्यिक चेतना में बदलाव भी प्रतिफलित हुआ । लक्ष्मीनारायण लाल के शब्दों में "इन जीवनगत, मूल्यगत संघर्षों - इसकी आन्तरिक और बाह्य दोनों तरह की चुनौतियों से, रचना के प्राणों से लड़ने का सत्य - यही है स्वतन्त्रता के बाद की 'नई कहानी' । यही है उसका अपना अपूर्व व्यक्तित्व और निजत्व ।"[1]

जिन पुराने कहानीकारों ने सन् 1930 के आसपास लिखना प्रारम्भ किया था, वे अपने को रिपीट करने लग गये थे । उनमें इस मोहभंग के अहसास को अभिव्यक्त करने की रचनात्मक शक्ति नहीं थी । उनकी रचना-पूंजी इतनी कम थी कि वे कुछेक अच्छी कहानियाँ लिखने के पश्चात् 1947 के आसपास चुके हुए दिखने लगे थे । जैनेन्द्रकुमार, भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार आदि लेखक अपनी ही रचना-रूढ़ियों के शिकार बन चुके थे । इन कहानीकारों की

1- "नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति" डॉ0 देवीशंकर अवस्थी, पृ0-212

सृजन -क्षमताओं के कुण्ठित हो जाने के कारण न संवेदना में बदलाव आ रहा था, न शिल्प में । अज्ञेय और यशपाल अपनी कहानियों में व्यक्ति और समाज के द्वन्द्व को तथा विभाजन की मानवीय त्रासदी को उभारकर इस दृष्टि से प्रयत्नशील अवश्य थे, पर कुल मिला कर वातावरण में गतिशीलता का अभाव ही था ।

यह प्रवृत्ति और दृष्टि 'नयी कहानी' को पुरानी कहानी से अलगाती है । पुरानी कहानी में जहाँ विचार या धारणा अथवा सिद्धान्त - विशेष या सामाजिक न्याय की कोई अमूर्त सी कल्पना रचना पर हावी होने लगती थी वहाँ नई कहानी ने विचार या धारणा या सिद्धान्त - विशेष की अपेक्षा अनुभूत सत्य या भोगे हुए यथार्थ को कहानी में ग्रहण किया । और अनुभव की प्रामाणिकता पर बल दिया । इससे 'नई कहानी' जैनेन्द्र और अज्ञेय की कहानी कला से भिन्न हो गई । मनुष्य का अपने परिवेश से एक नया सक्रिय अनुभवात्मक रिश्ता कायम हुआ और इस रिश्ते के भिन्न - भिन्न पहलुओं और रूपों को कहानियों में उजागर किया गया । पुरानी कहानी में जहाँ बाकायदा एक 'प्लाट' और चरित्र - चित्रण की प्रणाली रहती थी वहाँ 'नयी कहानी' में 'प्लाट' और चरित्र - चित्रण की जकड़बंदी काफी हद तक कम हुई ।

वास्तव में 1947 के पश्चात हिन्दी कहानी का स्वरूप पूरी तरह बदल गया है । कहानियों का कथा-तत्व, उनकी बनावट तथा उनके प्रतीक पूर्णतः बदल गए हैं । कहानी की भाषा उतनी इकहरी नहीं रह

गई है। भाषा का शब्द - भण्डार और उसकी अभिव्यंजना शक्ति काफी समृद्ध हो गए हैं। उसमें ऐसे बिम्ब प्रतीक और अर्थ उभरने लगे हैं जो स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन की जटिलताओं को एक समर्थ तथा ईमानदार अभिव्यक्ति दे सकें, जो व्यक्ति की अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों का चित्रण कर सकें और साथ ही समाज की व्यापक सच्चाइयों को भी पकड़ सकें।

सन् 1947 से 60 तक नए कहानीकारों ने अपने सृजनात्मक कृतित्व से हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण योग दिया। अकेले इस शब्द में जितनी अच्छी कहानियाँ लिखी गई वह अपने आप में एक उदाहरण हैं। प्रत्येक कहानीकार ने अपने सृजन के माध्यम से अपनी जीवन-दृष्टि एक-सी नहीं रही है। डॉ0 नामवरसिंह के शब्दों में "हिन्दी क्षेत्र में इस समय न कोई व्यापक जन आन्दोलन है और न जनता की सशक्त राजनीतिक पार्टी और न ही साहित्य के क्षेत्र में किसी ऐसी पार्टी की सूझ बूझ भरी पहल - इस अभाव को देखते हुए इस कहानी दशक की उपलब्धियाँ काफी महत्वपूर्ण हैं।"[1]

कहानीकार ने अपना - अपना ढंग ढर्रा बना लिया और उसी को छांटने - तराशने में लगा रहा। असल में जिनके हाथों कहानी ने ज़िन्दगी पाई उन्हीं के हाथों मौत भी। नई कहानी आज पुरानी लगती है, इसकी वजह पूर्वाग्रह नहीं, प्रतिस्पर्द्धा नहीं, केवल संवेदनाओं का

1:- "नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति" डा0 देवीशंकर अवस्थी, पृ0-243

नया धरातल है । नई कहानी में नया कथा प्रयोग प्रिय लगा था पर उसे बार - बार दोहराने से वह बेजान हो गया । "-----सीमाओं के होते हुए भी नई कहानी नई मानी जा सकती यदि उसमें गढ़ाव का उतना मोह, चटपटी घटनाओं की भरमार और सनसनीखेज़ क्लाइमेक्सों की ज़िद न होती । परिणाम यह हुआ कि कई कहानीकार, कहानीकार न रहकर शिल्पकार बन गए और कहानी कला न होकर शिल्प कला ।"[1]

सन् 1959-60 के आस पास के कहानीकारों की जो पीढ़ी उभर कर आई, उसके मन में 'नई कहानी' के प्रति गहरा विद्रोह था । इसका परिणाम यह हुआ कि इन्होंने कहानी मात्र को अस्वीकार करके हिन्दी में अकहानी की आवाज़ उठा दी । इस कहानीकार पीढ़ी के पास न कोई गौरवशाली अतीत था और न स्वतन्त्रता इसके लिए कोई विशेष उलपब्धि थी । अपने परिवेश से इसे कोई रोमांटिक लगाव नही था और वस्तुत: इसके आस-पास कोई रोमांटिक संसार बना ही नहीं । उनके हिस्से में जो कुछ आया, वह विकृत और घृणित था और इन्हीं विकृतियों में रहना उसकी नियति थी । अपनी छटपटाहट को, जीवन के साथ जुड़ पाने की तीव्र उत्कण्ठा को उसने निर्ममता पूर्वक व्यक्त करना आरम्भ किया । इन कहानीकारों की कहानियाँ न समस्या-प्रधान थीं, न घटना-प्रधान और न चरित्र-प्रधान । वह संवेदना प्रधान

1- "नई धारा" पृ0- 245

प्रयोग था । यहीं से हिन्दी कहानी से अतिरंजना समाप्त हुई और पहली बार कहानीकार में सत्य को निर्ममतापूर्वक सामने रखने का साहस भी दृष्टिगोचर होने लगा ।

हिन्दी कहानी की यात्रा की सार्थकता इसी सत्य से स्पष्ट होती है कि यह अपने को नए रूपों और रंगों में ढालती रही है । हिन्दी कहानी के हर अगले स्वर ने जडत्व को तोड़ा है । प्रेमचन्द के सामाजिक यथार्थ ने प्रारम्भिक युग की रूमानी भावधारा को तोड़ा था, प्रगतिशील दौर के ठहराव को नई कहानी ने । नई कहानी के व्यक्तिवादी रूझान को साठोत्तरी कहानी ने झटका है, ठहराव और जड़ता के लिए जैसे परिवर्तन हमेशा चुनौती बनकर आए हैं और आलोचकों के अनुसार, "यह परिवर्तन यह सिद्ध करने में सफल रहे हैं कि मानवीय अनुभवों, यथार्थ के विविध आयामों और समकालीन विसंगतियों से सीधा साक्षात्कार करने और समग्रता से उन्हें चित्रित करने में केवल कहानी विधा ही सक्षम रही ।"[1]

- 0 -

1- "सक्रिय कहानी" पृ0- 248